# संपादकीय

## कोरोना, रोजगार और स्वदेशी का सवाल

कोरोना-कोविद 19 के प्रकोप की वजह से नौकरी-व्यवसाय द्वारा आजीविका चलाने वालों पर सबसे ज्यादा मार पड़ी है। विश्वव्यापी लोकबंदी के बीच स्वास्थ्य सेवाओं, मास्क-वेंटिलेटर निर्माण और ऑनलाइन कार्य के कुछ रोजगारपरक अवसर सृजित हुए हैं, किंतु सरकारी कार्यालयों के सिवा निजी संस्थानों, उद्यमों में पूर्णतः या अंशतः कारोबार घटा है। शराब के धंधे को अपवादस्वरूप छोड़ दिया जाए तो विलासितापूर्ण, मनोरंजनपरक, शौकिया काम-धंधे या तो ठप्प हैं या न्यूनतम स्तर पर किसी तरह चल रहे हैं। अमेरिका जैसे विकसित देश में आसन्न संकटों के कारण बेरोजगारी की विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है, साढ़े तीन करोड़ से अधिक लोगों ने बेरोजगारी भत्ते के लिए आवेदन किया है। वह भी तब, जब बड़ी संख्या में प्रवासी लोग वहाँ से अपने मूल देश को लौट गए हैं। भारत में ही 'वंदे भारत' मिशन के तहत हजारों लोग वापस आए हैं। अमेरिका या भारत ही नहीं, पूरे विश्व में कमोबेश कामगारों के लिए तात्कालिक रूप से नियमित रोजगार के अवसर काफी घटे हैं। हालाँकि लिखने-बोलने वालों ने इस दरम्यान सृजनात्मकता का कीर्तिमान स्थापित किया है। लेखन और वेबीनार में सहभागिता द्वारा लेखकीय और वक्तृत्व कला में भरपूर निखार आया है, पर इन सबसे आजीविका चलने से रही। पूरे विश्व की बात अलग है, आधुनिक भारत में कुछ गिने-चुने लोग ही होंगे, जो लिखकर या व्याख्यान देकर भरण-पोषण चला पाते होंगे! जितने लेखक-वक्ता हैं, वे किसी-न-किसी नौकरी, व्यवसाय से जुड़े हैं और कई स्वभाववश या मजबूरी के कारण पैसों के लिए अशैक्षणिक-अलेखकीय कार्यों में संलग्न हैं। आर्थिक निश्चिंतता के कारण इत्मीनान से लिखने-बोलने का समय उपलब्ध होता है, कलात्मकता का उत्कर्ष होता है। विद्वता, वक्तृता व लेखन तभी झमकता है, जब मानस चिंतामुक्त हो आर्थिक मोर्चे पर। जो जितना बड़े पद पर है, उसकी विद्वता-बुद्धिमत्ता की उतनी ही ख्याति की व्याप्ति है।

यद्यपि कला जगत के अन्य कार्यों नृत्य-संगीत, फिल्म, नाटक, हर्षोत्सव, सौंदर्य संसाधन से जुड़े व्यवसायों में रुकावट और गिरावट के कारण तंगी है। इस कारण भी कुछएक कलाकारों ने आत्महत्या करने जैसा दुस्साहस भरा कदम उठाया है। जिम, होटल, उत्सव आयोजन स्थल, सभागार, सामुदायिक भवन, शादी-विवाह, भोज-भात, मॉल आदि से लाखों की जीविका चलती है, इनका कारोबार भी लगभग शून्य के कगार पर आ चुका था और कई अभी भी उसी स्थिति में हैं। जिन शैक्षणिक-अकादमिक संस्थानों ने व्यावसायिक रूप धारण कर लिया है, उन संस्थानों, कोचिंग केंद्रों, प्रशिक्षण केंद्रों के बंद होने के कारण स्वाभाविक रूप से खामियाजा कर्मचारियों को भुगतना पड़ा है; उन्हें नौकरी तक से हाथ धोना पड़ा या फिर वेतन से वंचित होना पड़ा है। आमदनी न होने के कारण स्ववित्तपोषित संस्थानों के अस्तित्व पर संकट गहराया है। स्पष्ट है कि इन सबका असर बाकी क्षेत्रों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। रोजगार के सारे उपक्रम कमोबेश एक-दूसरे से गुँथे हैं, इसलिए किसी एक की अच्छी-बुरी स्थिति दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। कोरोना और लोकबंदी के साथ ही नहीं, इससे काफी पहले से अर्थव्यवस्था में मंदी वैश्विक स्तर पर दर्ज की गई है, चाहे जमीन-जायदाद (प्रोपर्टी) का मामला हो या निर्माण (कंस्ट्रक्शन) कंपनियों का, वाहन उद्योग हो या दूरसंचार का क्षेत्र, सबमें पहले से मंदी छाई थी और कर्मचारियों की छँटनी शुरू हो गई थी, फिर भी कमोबेश काम चलता था। कोरोना और लोकबंदी के कारण इनका व्यापीकरण हो गया और लगभग सारे ही क्षेत्र मंदी की चपेट आ गए। स्वाभाविक है कि जब वेतन नहीं मिलता तो खरीदारी भी कम होती है, खरीदारी कम होगी तो बिक्रेता की बचत में घटोतरी होगी और इसका असर उत्पादन पर पड़ेगा, उत्पाद की खपत कम होगी तो निर्मिति कम होगी और निर्मिति कम होगी तो कर्मचारियों को कम करना ही पड़ेगा। सारे कार्य सूक्ष्मतः-स्थूलतः एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।

कोरोना के कारण मध्य व निम्न वर्ग अधिक प्रभावित हुआ है। जो बेरोजगार और निठल्ले रहे हैं, वे तो खैर हैं ही, लेकिन जो लोग निजी क्षेत्र के व्यवसाय या नौकरी में कार्यरत थे, वे बड़ी संख्या में बेकार हुए हैं। अकेले भारत में करोड़ों लोग रोजगार से वंचित हुए हैं, इसलिए सरकार की ओर से बुनियादी आवश्यकता भोजन-अनाज आदि का प्रबंध कराया जा रहा है। लेकिन इससे आगे कैसे सहायता की जा सकती है - इस पर विचार होना चाहिए। जो लोग काम कर सकते हैं, पर बेरोजगार हैं और उनकी उम्र साठ-पैंसठ साल से कम है, उन्हें अमेरिका, इटली, जर्मनी, फ्रांस, नार्वे आदि देशों की तरह यहाँ भी बेरोजगारी भत्ता दिया जाना चाहिए और उसके एवज में सरकार उनकी योग्यता के हिसाब से काम ले। उन्हें उस काम का स्वतंत्र जिम्मा सौंपा जा सकता है, जिसके लायक वे हैं। अनाप-शनाप सरकारी योजनाओं में अरबों-खरबों रुपए व्यवस्था की भेंट चढ़ जाते हैं, जिनमें बिचौलिया तत्त्व अधिक फायदा उठा लेते हैं और जो वास्तव में जरूरतमंद हैं, वे लाभ से वंचित रह जाते हैं। इस तरह इनके माध्यम से कोई उल्लेखनीय कार्य संपन्न नहीं हो पाता। गौरतलब है कि इटली में बेरोजगारों को 90 हजार रुपए प्रति माह, फ्रांस में 50 हजार रुपए प्रति माह, जर्मनी में 30 हजार रुपए प्रति माह, जापान में 15 हजार रुपए प्रति माह 65-66 साल की उम्र तक मिलता है। इस क्रम में योग्यता व जरूरत के अनुरूप कार्य व रोजगार के अवसर तलाशे जा सकते हैं और कार्य के अनुरूप लोगों को ढाला जा सकता है। इस प्रकार जो विशाल मानव संपदा है, उसका दोहन होगा। जहाँ मानवीय शक्ति का सदुपयोग नहीं होता, वहाँ दुरुपयोग की संभावना बढ़ती है और श्रम-सामर्थ्य कुंठित होकर खत्म हो जाता है। सदा से ऐसी अनिष्टकारी शक्तियाँ भी कार्य करती रही हैं, जिनका वजूद एवं स्वार्थ सक्षम मानव संपदाओं को अक्षम बनाने और कुछ न करने देने पर ही टिका है, इसीलिए कर्मपरक-रोजगारपूर्ण मानव संपदा के सदुपयोग की नीति निर्धारित नहीं हो पाती।

कोरोना के अतिरिक्त भारत और चीन के बीच सीमा विवाद के कारण भारत में चीनी सामानों के बहिष्कार की स्थिति बनी है। लंबे समय से उन क्षेत्रों में भी विदेशी वस्तुओं का वर्चस्व स्थापित है, जिन क्षेत्रों में उसकी आवश्यकता नहीं थी। उनके समानांतर स्वदेशी माल उपलब्ध हैं, बेशक वह कहीं महँगा तो कहीं गुणवत्ता में उन्नीस-बीस ही क्यों न हो; लेकिन शोचनीय है कि विदेश से आए माल यदि यातायात खर्च के बावजूद सस्ते पड़ते हैं तो फिर भारत में क्यों नहीं सस्ते उपलब्ध हो सकते और गुणवत्ता भी क्यों नहीं विश्वसनीय व विश्वस्तरीय हो सकती? इससे समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का फर्क भी पता चलता है। फिर बाहर से आईं सारी चीजें सस्ती और अच्छी ही रहती हैं क्या? जाहिर है कि नहीं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय से बाह्य वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी को अपनाने पर जोर दिया गया, किंतु वैश्विक दुनिया और उदारीकरण के तहत विश्व बाजार की परिणति के अंतर्गत अब यह अव्यावहारिक लगता है। फिर भी इसमें शक नहीं कि आत्मनिर्भरता, रोजगार और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्वदेशी उत्पाद ज्यादा उपयुक्त बैठता है। दूसरी ओर, दुनिया की दूरी में कमी बाजार के कारण ही नहीं आई, बल्कि उत्पादकता के क्षेत्र में पहले से है, उसकी तकनीक आती-जाती रही है। जो उपलब्ध नहीं, उसे अपने यहाँ बनाने और बाहर से मँगाने में निषेध नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से लगभग अस्सी-पच्चासी प्रतिशत उत्तम सामान स्वदेश निर्मित उपलब्ध हो सकता है और पंद्रह-बीस प्रतिशत के लिए ही विदेशों से मँगाने की जरूरत रह जाती है। चीन से जितनी धनराशि का सामान आता है, उनसे एक-चौथाई का ही भारत से वहाँ जाता है। आयात-निर्यात के सामान्य नियम के अंतर्गत सभी देशों की कोशिश ज्यादा-से-ज्यादा निर्यात और कम-से-कम आयात की होती है, पर यह भी सच है

कि सब जगह सब कुछ उत्पादित नहीं होता। अधिक अच्छा और आवश्यक चीजों के लिए पूरे विश्व बाजार को खुले रखना आधुनिक सभ्यता की अनिवार्यता है। जहाँ तक चीन से आने वाले सामानों का सवाल है, उनके बहिष्कार की बजाय उनके आने पर ही छन्ना लगाना चाहिए - सैनिक शहादत या सीमा विवाद का इंतजार किए बिना। स्वाभाविक है, इसका असर यहाँ से भेजे जाने वाली वस्तुओं पर भी पड़ेगा और उन्हें भी निरोध का सामना करना पड़ेगा। निवेश-विनिवेश, आयात-निर्यात के ज्यादा अनुकूल यह विचार नहीं है, पर जहाँ स्वदेशी सामान उपलब्ध हो सकता है, वहाँ विदेश से मँगाने की मंशा क्यों?

बहरहाल, कोरोना के संकट के कारण रोजगार के अवसर व तरीकों को बदला जा रहा है, इसलिए सामान्य जिंदगी का पटरी पर लौटना तय है। रोजगार-व्यवसाय पर ज्यादा दिन तक संकट नहीं रहने वाला। कोरोना के साथ चलते हुए कार्य के नए अवसर सृजित होंगे और परंपरागत कार्यों को नए ढंग से निबटाने के सिलसिले में रोजगार भी निर्मित होंगे। लेकिन वैश्विक दुनिया की नई आवश्यकताओं के आलोक में न केवल विचार-विमर्श जरूरी है, वरन् खोज-अनुसंधान के साथ तदनुरूप कार्य भी अपेक्षित है। यही नहीं, भावी चुनौतियों और समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में तत्पर रहना मानवीय युगधर्म है। इन्हीं सब कार्यों में मस्तिष्क की ऊर्जा शक्ति खपाने की आवश्यकता है। इनको संपन्न करते हुए जीविका भी चल सकती है। रचनात्मक-सृजनात्मक कार्य जब संपन्न होते हैं तो उनसे विश्व समाज की दिशा तय होती है, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसे कार्यों में अवरोध खड़े करके नकारात्मक माहौल तैयार किया जाता है। पारिश्रमिक और मुनाफे पर ध्यान के अतिरिक्त कार्य की व्यक्तिगत, मानवीय, सामाजिक और वैश्विक उपादेयता का मूल्यांकन ज्यादा जरूरी है। कार्य और उसका परितोष पहले है और पारिश्रमिक द्वितीयक तो है, किंतु सवाल यह है कि जीविका चले बिना कोई सृजनात्मक कार्य संपन्न हो सकता है क्या?

## दुश्मनों के संग, दोस्तों से असंग

भले ही वायरसों के विषय में लंबा विवाद चलता रहा हो कि ये सजीव होते हैं या निर्जीव, पर विष के अणु होने के कारण ये इंसान के दुश्मन हैं - इसमें कोई शक नहीं। हाल में आया कोरोना विषाणु भी दुश्मन ही है, पर इसी के संग रहना सीखना होगा, क्योंकि एक बार जब इंसानी देह में समागम हो चुका है तो इतनी जल्दी यह जाने से रहा। एक देह से दूसरी, दूसरी देह से अन्यान्य में प्रजनित होकर पसरना इसकी फितरत है। जननिकता जैसे सजीवों वाले गुण रखने के बावजूद इसकी जनन-प्रक्रिया लोहे के जंग की तरह काम करती है, जो अपनी निर्जीवता में भी तीव्र तत्परता से फैलती है और कितने ही सजीवों के लिए प्राणघातक सिद्ध होती है। इसके चले जाने का एहसास काया के निरोग होने के साथ बेशक हो जाता है, पर आने का अस्तित्वबोध तब तक नहीं झलकता, जब तक कि गहरी चिंता में छानबीन नहीं होती या फिर शरीर के जिस-तिस हिस्से में उसका अंतर्बाह्य कुप्रभाव परिलक्षित नहीं होता। अति सूक्ष्मता के कारण यह अदृश्य है, पर आश्रय के आंगिक अनुभावों में इसके लाक्षणिक असर दिखे बिना नहीं रहते। जब कभी लक्षण अप्रकट रह जाते हैं, तब समूचे शरीर को शून्य-सुन्न कर अपना विनाशकारी रूप दिखाते हैं। इस प्रकार शुरुआती बेचैनी के बाद 'शांत' कर देना ही इसका चरम लक्ष्य है, भले ही यह शांति परमशांति में तब्दील न हो पाए।

दुश्मन लंबे समय तक साथ रहे तो भले ही दुश्मनी खत्म न हो, पर उससे तालमेल बिठाकर चलने की बाध्यता बन जाती है, उससे शत्रुवत मित्रता स्थापित होती है और वह नुकसान भी कम पहुँचाता है। यदि नुकसान करता भी है तो उसका विध्वंसक प्रभाव बहुत कम होता है। साथ-साथ जीने के अभ्यास में झेलने की क्षमता अतीव बढ़ जाती है। दुश्मन के रूप में कोरोना का विषाणु इंसान में नया-नया शरीरस्थ हुआ है, अतः सामंजस्य बिठाने में समय लगेगा; आश्रय-देह के लिए ही नहीं, खुद कोरोना के लिए भी, तभी तो कहीं बुखार में, कहीं सर्दी-जुकाम में, कहीं खाँसी और सरदर्द में, तो कहीं फेफड़े-गले की कराह में उलझ गया है, ठौर की तलाश में मानस स्थिर नहीं कि आखिर उसे अपनी अनुकूल उपस्थिति कहाँ दर्शानी है। कायदे से जिस आतिथेय के यहाँ वह जबरन घुसा है, उससे ही उसे सही ठौर मिलना चाहिए, लेकिन इसकी करनी ऐसी है, जिससे कोई इसकी सहर्ष मेहमाननवाजी का साहस नहीं दिखाता, फलतः किसी प्रभाग का प्रभार नहीं मिलने पर इधर-उधर भटकना उसकी नियति बन चुकी है। हो सकता है घुमक्कड़ी ही उसकी प्रवृत्ति हो, पर वहाँ भी दूरस्थ केंद्र का होना जरूरी है। मौजूदा हालात में गले या फेफड़े में इसकी संभावना बनती दिख रही है।

दुश्मनों के नाम पर नाम रखने की परंपरा नहीं; वायरसों, रोग-व्याधियों के नाम पर भी नामकरण की परिपाटी नहीं मिलती; लेकिन कोरोना को अपनी तीव्र धमक से फट इतनी लोकप्रियता मिली है कि निशंक भाव से मनु की संतानों का नाम कोरोना कुमारी, कोरोना कुमार रखा जाने लगा है। कोरोना के बारे में कम लोगों को ही सही, पहले से जानकारी थी, पर इसके नाम पर नामकरण का रिवाज इंसानी शरीर में इसके प्रवेश के सामने आने और तबाही का मंजर देखने के दरम्यान अब जाकर शुरू हुआ है। एक तरफ जनसमाज भयग्रस्त है, तो दूसरी तरफ भय को प्रीति में बदलने के लिए इसके नाम पर नाम रखकर 'भय बिनु होहिं न प्रीत' का अनुपम अनुराग प्रस्तुत है। यही नहीं, इसकी करुणामयी आद्र छाया में पूजा-अर्चना के साथ लड्डू-मिष्ठान्न का भोग चढ़ाया जा रहा है, हालाँकि देवी-देवता रूप में फिलहाल इसे लोकमान्यता हासिल नहीं है, परंतु 1975 में आई हिंदी फिल्म के आधार पर संतोषी माता की दैवी प्रतिस्थापना तरह की इसकी संभावना को भी खारिज नहीं किया जा सकता। बेशक विज्ञान का युग है, पर जब तक प्रामाणिक इलाज मयस्सर नहीं होता, तब तक इस प्रकार प्रकृति में कोरोना के रोष को कम करने का अनुष्ठान-उपक्रम 'हारे को हरिनाम' की तरह चल सकता है। भगवान भगवान हैं, क्योंकि वे शक्तिमान हैं और शक्तिमान हैं, इसीलिए पूजनीय भी। ऐसे देवी-देवता की परिकल्पना नहीं, जो शक्तिशाली न हो, पर उसकी पूजा का विधान हो। इसी निकष पर उन लोगों की पूजा भी होती है जो देवी-देवता नहीं थे, पर शक्तिसंपन्न थे। कोरोना का वायरस चाहे सजीव न हो, पर है नुकसान पहुँचाने की अपूर्व क्षमता से लैस, इसलिए इसकी आरती उतारने में दिक्कत नहीं। प्राकृतिक संस्कृति में प्रत्येक चर-अचर वस्तु पूजनीय बनने की संभावनाओं से संयुक्त है। कोरोना तो एक प्रतीक होगा ईश्वरोपासना का, प्रतिमा की तरह; जो स्वयं अचर प्रस्तर होते हुए भी प्रतीक है भगवान का। इस वायरस को भी प्रकृति व ईश्वर का प्रतीक बनाया जा सकता है, जो दिखता नहीं, पर अपना प्रभाव दिखाता है; भगवान भी कौन-से दिखते हैं, पर उनके प्रभाव से कौन अछूता है?

कोरोना ने न केवल अपने साथ लोगों को ले जाने का सामर्थ्य दिखाया है, अपितु लाखों लोगों को अपने साथ ले भी गया है। यही नहीं, एक करोड़ से ऊपर लोगों को इसने अपनी जकड़ में ले लिया है, पर शायद इसके यान में इतनी जगह नहीं कि बहुत-सारे लोगों को एकसाथ ले जा सके। इसलिए धीरे-धीरे ढोने के क्रम में अनेकों को कुछ-कुछ दिन साथ रखकर छोड़ रहा है। आम लोग भी इसकी पकड़ से बचने के लिए हद तक सतर्कता रख रहे हैं, तरह-तरह उपाय रच रहे हैं। संस्थाएँ, सरकार, अस्पताल उसके फंदे में फँसे लोगों को निकलवाने के प्रयास में दिनरात एक करके लगे हैं, कर्मी अपनी जान जोखिम में डालकर डटे हैं। इन सारे चक्रव्यूहों को तोड़ते हुए कोरोना जिनको अपने साथ ले जाता है, उनके पार्थिव शरीर के साथ जाने की हिम्मत बहुत कम लोग ही कर पाते हैं। साहस यदि कर भी लें तो जाना संभव नहीं होता, कुछएक को ही क्रियाकर्म करना पड़ता है। कोरोना की क्रोड़ में जीते जी कराहते-सुस्ताते लोगों में भी यही स्थिति जहाँ-तहाँ दिख रही है। जिसके संग कोरोना है, उसे बाकियों का

साथ छूटा है, वह असंग हो गया है। इसकी दस्तक पर हुई पूर्ण लोकबंदी से इस असंगता को व्यावहारिक जामा पहनाने में मदद मिली, हालाँकि यह हमेशा नहीं चल सकती, परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों। कोरोना के भय और उससे उत्पन्न मजबूरी से भी ऊपर निस्संगता एक आत्मानुशासन का व्रत बन आत्म और अनात्म से जुड़ने का बढ़िया उपक्रम बन गया है।

## कोरोना और बिहार विधानसभा चुनाव

इस साल के अक्टूबर-नवंबर महीने में बिहार विधानसभा का चुनाव होना है, लेकिन कोरोना-कोविद 19 के प्रकोप के चलते चुनाव पर संशय के बादल मँडरा रहे हैं। प्रमुख विपक्षी पार्टी राष्ट्रीय जनता दल का चुनाव स्थगित करने पर जोर है; दूसरी ओर, भारतीय जनता पार्टी ने चुनाव में दिलवस्पी दिखाई है और इसके लिए अपनी तैयारी भी। जनता दल (यू) के नेतृत्व में बिहार की सरकार चल रही है, अतः उसका प्रयास कोरोना को नियंत्रित करने का है, ताकि चुनाव लायक स्वस्थ माहौल बन सके। निश्चित रूप से चुनाव तभी संभव है, जब महामारी का खौफ खत्म हो अथवा न्यूनतम अवश्य हो जाए। तभी चुनाव आयोग और उसके कर्मचारी, राजनीतिक दलों के साथ आम जनता बेखौफ होकर चुनाव में शिरकत कर सकती हैं। सदी की सबसे बड़ी त्रासदी के तौर पर कोरोना की विभीषिका मुँहबाए खड़ी है, इसलिए एक तो महामारी को कम करने का भागीरथ यत्न जरूरी है और दूसरा, इसके संग चलते हुए सारे कार्यों को निष्पादित करना सीखना भी आवश्यक है। आगामी चुनाव भी इन्हीं दो ध्रुवों पर बहुत-कुछ निर्भर करेगा। जो लोग चुनाव टालने की बात कर रहे हैं, वे भी तैयारी में कोताही नहीं बरत रहे, क्योंकि भलीभाँति पता है कि चुनाव किसी की माँग की बजाय व्यापक प्रांतीय परिप्रेक्ष्य में ही स्थगित अथवा संपन्न होगा। गनीमत है कि इस साल आम चुनाव या किसी अन्य राज्य में विधानसभा चुनाव संभावित नहीं है, नहीं तो इस कारण ही न जाने कितने लोग संक्रमण की चपेट में आ जाते। एक-दो राज्यों में राज्यसभा चुनाव होगा, पर बड़े पैमाने के राज्यसभा या विधान परिषद के द्विवार्षिक चुनाव संपन्न हो चुके हैं। छिटपुट उपचुनाव भी समय-समय पर अपेक्षित होते हैं, पर उन्हें भी जितना टाला जा सकता है, टाला गया है। अगले साल कुछ राज्यों में विधानसभा चुनाव होंगे, किंतु तब तक ज्यादा संभावना यही है कि स्थिति संभल जाएगी और कोविद 19 का टीका भी उपलब्ध हो जाएगा। टीकांकित होने के साथ कुछ हद तक निश्चिंतता और सुरक्षा का वातावरण निर्मित होगा।

एक बार फिर अनेक राज्यों में, जिनमें बिहार भी शामिल है, लोकबंदी-लॉकडाउन लगाना पड़ा है, क्योंकि कोविद 19 के केस शीघ्रता से पसर रहे हैं। अगर बढ़ोतरी तीव्र से तीव्रतर होती रही तो लोगों को अपनी सेहत के बारे में ही सोचने लिए विवश होना होगा, चुनाव के विषय में बाद में। 12 करोड़ की जनसंख्या और आबादी के घने घनत्व के बावजूद बिहार में कोरोना का वह प्रकोप देखने को नहीं मिला, जो महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, दिल्ली आदि में देखने को मिला है। बड़े पैमाने पर प्रवासी कामगार भिन्न-भिन्न राज्यों से यहाँ तक कि उन राज्यों से पलायन करके पहुँचे हैं, जहाँ शुरुआती दिनों में ही कोरोना के केस बड़ी संख्या में मिलने लगे थे और आज भी उन्हीं राज्यों में कोरोना के 80-85 प्रतिशत तक सक्रिय मामले हैं। दिल्ली हो या मुंबई या पूरा महाराष्ट्र, चैन्नई हो या कोलकाता, गुजरात हो या राजस्थान, इन्हीं स्थानों से लाखों की तादाद में प्रवासी जन बिहार लौटे हैं। कोरोना का वायरस विदेशों से यहाँ के महानगरों में, फिर शहरों-नगरों और गाँव-कस्बों में फैला है। प्रवासियों का पलायन करके बिहार पहुँचना भी कोविद 19 के पसरने का एक बड़ा कारण हो सकता था!

कोरोना के कहर के बीच बिहार में चुनाव संपन्न कराना कम चुनौतीपूर्ण नहीं है, क्योंकि संसाधनों का अभाव है, गरीबी व बेरोजगारी है, जनाधिक्य है, प्रवासियों की समस्या गंभीर है। थोड़े-से कोरोना केस पर ही चिकित्सा सेवा चरमर्रा गई है, अफरा-तफरी मचने लगी है, यदि केस ज्यादा बढ़ तो संभालना मुश्किल होगा, अतः वे सारे कारक जो परोक्षतः-प्रत्यक्षतः कोविद 19 को फैला सकते हैं, उन पर नियंत्रण आवश्यक है। विधानसभा चुनाव भी ऐसा ही एक कारक सिद्ध हो सकता है, अतः यह संपन्न हो या न हो; दूसरा, संपन्न हो तो कैसे संपन्न हो, ताकि कम-से कम कोरोना का दुष्प्रभाव हो - यह विचारणीय है। सवाल उठता है कि कुछएक हजार केस पर जब राज्यसभा और विधान परिषद के चुनाव टल सकते हैं, तो अब जब ग्यारह लाख मामले आ चुके हैं, बेशक साढ़े सात लाख ठीक भी हो चुके हैं, तब भी लाखों केस पर चुनाव क्यों नहीं स्थगित होने चाहिए? गत राज्यसभा और विधान परिषद चुनाव में जितने मतदाता थे, उनसे दर्जनों गुना अधिक विधानसभा चुनाव में प्रत्याशी होंगे। लगभग सात करोड़ मतदाता होंगे, हजारों की संख्या में उम्मीदवार और लाखों कर्मचारियों को मिलकर चुनाव निष्पन्न कराना होगा। बेशक बिहार में कोविद 19 की विस्तार दर अनेक राज्यों से कम है, पर राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ोतरी के असर से बिहार ज्यादा दिनों तक पीछे नहीं रह सकता। यद्यपि कुछ देशों में कोरोना महामारी की भयंकर तबाही के बीच सामाजिक दूरी निभाते हुए चुनाव संपन्न हुए हैं। रूस में जहाँ केस तेजी से बढ़ रहे थे और लाखों में पहुँच गए थे, वहाँ भी बखूबी जनमत संग्रह हुआ और पुतिन को 2036 तक राष्ट्रपति बनाए रखने के पक्ष में लोकमत सामने आया। कई देशों में आपातकाल लगाया गया, तभी कोविद 19 पर पूर्णतः या अंशतः लगाम लगाना संभव हो सका। आपात स्थिति में चुनाव भारत में भी टलते रहे हैं और विदेशों में भी।

यदि स्थिति नहीं सुधरती है तो स्थगन के सिवा कोई रास्ता नहीं बचेगा, पर फिलहाल चुनाव टालने-न टालने पर अड़ जाना एकपक्षीय, पूर्वाग्रह भरा लग सकता है। कुछ दिनों में स्थिति की विकटता साफ हो जाएगी। चुनाव टालने का फैसला कभी भी झटके से लिया जा सकता है, पर बिना तैयारी के चुनाव कराने का फैसला कभी भी नहीं लिया जा सकता। इसके लिए दो-तीन महीने का समय अपेक्षित रहता ही है। कोविद 19 के कारण दिनचर्या, सामाजिक सरोकार, कार्यालयी कार्यशैली और राजनीतिक क्रियाकलाप सब बदल गए हैं। जिन दलों ने इसके अनुरूप अपनी गतिविधियों को संचालित करना नहीं सीखा है, उन्हें राज्य-राष्ट्र को पीछे ले जाने वाला माना जा सकता है। सामाजिक दूरी बनाए रखते हुए सामाजिक-राजनीतिक कार्य कैसे चल सकते हैं - इसके लिए नए-नए रास्ते बनते जा रहे हैं। इसी कड़ी में पैंसठ वर्ष से ऊपर के नागरिकों को डाक बैलेट के द्वारा मतदान करने की अनुमति मिली है। लोकतंत्र की शासनिक-प्रशासनिक इकाइयों के अस्तित्व की सार्थकता लोक को स्वस्थ, सक्षम, समृद्ध बनाने में निहित है और स्वस्थ, शिक्षित जनमानस से लोकतांत्रिक शासन सुदृढ़ बनता है। इसलिए अगर लगता है कि चुनाव कुछ समय तक स्थगित करने से जनता कोविद 19 से बच सकती है तो स्थगित करने से गुरेज नहीं होना चाहिए। अस्वस्थ वातावरण के चुनाव में उत्साहहीनता के कारण मतदान में काफी कमी होगी। चुनाव केवल जीतने वालों का उत्सव बनकर न रह जाए, अपितु हर्षोल्लास के साथ जनरुचि का विषय बन जाए - यह अत्यावश्यक है।

## तकनीकी युग में न्यायालय

भारत के उच्चतम न्यायालय ने कानूनी नोटिस-सूचना तथा समन-बुलावा भेजने के लिए ईमेल, व्हाट्स एप्प, टेली मैसेंजर, फैक्स आदि को औपचारिक माध्यम के तौर पर उपयोग करने की स्वीकृति दे दी है। इन माध्यमों से भेजे जाने वाले संदेश वैध माने जाएँगे, बशर्ते अपरिवर्तनीय पीडीएफ फाइल के रूप में भेजे गए हों। सोशल मीडिया द्वारा भेजे गए नोटिस-समन को ईमेल से भी भेजना अनिवार्य होगा, ताकि संप्रेषित सूचना को

रिकार्ड में सुरक्षित रखा जा सके। विशिष्ट चिह्न इंगित करेंगे कि प्राप्तकर्ता ने सूचना को देख लिया है या नहीं। कोरोना की भयावहता और लोकबंदी की दिक्कतों पर स्वतः संज्ञान लेकर अदालत ने सामाजिक दूरी बनाए रखने के ख्याल से यह निर्णय किया है। लोकबंदी के दौरान डाकघर के कार्यों का संचालन सुचारु न हो पाने के कारण नोटिस, समन आदि भेजना संभव नहीं हो पा रहा था। अतः हरियाणा, दिल्ली जैसे राज्यों में छिटपुट मामलों में यह प्रक्रिया चलने लगी थी। सोशल मीडिया समय बिताने और मनोरंजक जानकारी प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं, बल्कि शादी कार्ड, पत्र, महत्त्वपूर्ण दस्तावेज आदि भेजने और प्राप्त करने का लोकप्रिय जरिया पहले ही बन चुका था। अब पल भर में पेशी के लिए समन, नोटिस भेजा जा सकेगा, हालाँकि इसके लिए व्हाट्स एप्प, मेल आदि में कुछ अलग व्यवस्था करने की आवश्यकता पड़ सकती है, नहीं तो नोटिस भेजा जाएगा और वह देख भी लिया जाएगा, पर ऐसा झलक सकता है कि वह देखा-पढ़ा नहीं गया। परंपरागत तरीके से भेजे जाने वाले समन को कई बार लेने वाला कोई नहीं होता, वारंट स्वीकार नहीं होता, इसलिए अदालत में लौट आता है। कुछएक बार पता की बजाय ईमेल और फोन नंबर ज्यादा स्थायी लगते हैं। ज्यादा स्थायी न भी हों, तब भी सदैव व्यक्ति के सन्निकट रहने की संभावनाओं से ज्यादा युक्त तो होते ही हैं। स्थायी पते पर भी आदमी कौन-सा हमेशा बैठे रहता है। कुछ पेशेवर लोग अपना मोबाइल नंबर जल्दी-जल्दी बदल लेते हैं या जानबूझकर बंद कर देते हैं, लेकिन प्रायः लोगों के पास मोबाइल है और वे इसका उपयोग व्हाट्स एप्प, ईमेल, मैसेंजर आदि से संदेशों के आदान-प्रदान के लिए करते ही हैं। जो प्रयोग नहीं जानते, वे जरूरत लगने पर आसानी से सीख-जान सकते हैं, दूसरे का सहयोग लेकर जान-समझ सकते हैं।

कोरोना का भय हो या न हो, वैसे भी संचार माध्यमों की व्यापक पहुँच की स्थिति में इन माध्यमों से नोटिस-समन भेजना सुगम होगा। कोई मना भी नहीं कर सकता प्राप्त करने से, ज्यादा-से-ज्यादा संभावित नंबर ब्लॉक कर सकता है, पर इससे उसकी मंशा और इरादा का पर्दाफाश पहले ही हो जाएगा। इस प्रकार नोटिस-समन भेजने की लंबी प्रक्रिया से बचाव होगा, समय और व्यय की बचत होगी, साथ ही सरकारी श्रम की भी। जो तत्त्व समन-वारंट आदि को रुकवा देते थे और सीधे गिरफ्तारी या कुर्की जब्ती करवाने का इरादा रखते थे, उनकी भूमिका कम होगी। जिन लोगों को छल-प्रपंचवश सूचना, बुलावा, वारंट नहीं मिलते थे, उन्हें राहत मिलेगी। लेकिन इसके लिए याचिका में वादी-फरियादी और आरोपी के मोबाइल नंबर सम्मिलित करने होंगे। जरूरी नहीं कि आरोपियों के फोन नंबर, ईमेल आई.डी. आदि याचिकाकर्ता के पास हो ही, इसलिए उपलब्ध न होने की स्थिति में खोजबीन करनी होगी। यदि किसी प्रकार उपलब्ध न हो सके तो बुलावा भेजने की पूर्ववत प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी। दूसरा रास्ता यह हो सकता है कि संबंधित पक्षों के नजदीकी थानों तक नोटिस-समन मेल, व्हाट्स एप्प, मैंसेंजर आदि के माध्यम से भेजे जाएँ और वहाँ से आरोपी तक पूर्व प्रक्रिया के तहत पहुँचाए जाएँ, तब भी काफी समय, श्रम और व्यय बचेगा। अदालती कार्यवाहियाँ ऑनलाइन और इंटरनेट से जुड़ चुकी हैं खासकर उच्चतम और उच्च न्यायालयों में। इसी प्रकार ज्यादातर प्रशासनिक इकाइयाँ भी इंटरनेट से जुड़ चुकी हैं और जहाँ जुड़ाव नहीं है, वहाँ जोड़ने का काम चल रहा है। जाहिर है कि व्हाट्स एप्प, ईमेल, मैसेंजर, फैक्स आदि से सूचना भेजने का प्रावधान बाध्यकारी नहीं, वरन् एक विकल्प के तौर पर मंजूर हुआ है। बेशक अभी गौण विकल्प है, पर बाद में यही प्रमुख माध्यम के रूप में अंगीकार हो सकता है।

न्यायालय का निर्णय बदलते सामाजिक संबंधों, आधुनिक प्रौद्योगिकी व तकनीक विकास और वर्तमान जरूरतों के आलोक में समयानुरूप है; सामाजिक संरचनाओं के नए संदर्भ में प्रगतिशील कदम है। आखिर तकनीक के अस्तित्व का औचित्य भी इसी में है कि इससे जीवन सुव्यवस्थित ढंग से चल सके, आधुनिक बन सके। प्रशासनिक, न्यायिक, शासनिक परंपरा राजतंत्र से आरंभ होकर लोकतंत्र के अंतर्गत कार्य कर रही है। भारत की आधुनिक शासन पद्धति बहुत-कुछ अंग्रेजी शासन-सत्ता की पृष्ठभूमि का विकसित रूप है। समय के अंतराल में अनेक परंपरागत पहलू अव्यावहारिक हो गए हैं, कुछ औपचारिक रूप से खत्म भी हो चुके हैं और कुछ के निकाले जाने की प्रक्रिया चल रही है। नई व्यावहारिकी, जिसका निर्माण तकनीक की क्रोड़ से हुआ है या जो तकनीक की ही उपज है, उसके बनिस्बत परंपरा-परिपाटी को नवीनतम प्रणाली में ढालना जरा कठिन है। जब मोबाइल-इंटरनेट का चलन नहीं था, तब व्हाट्स एप्प, फेसबुक आदि भी नहीं थे। अब तो इन्हीं के इस्तेमाल के लिए मोबाइल खरीदे जाते हैं, इंटरनेट की संबद्धता ली जाती है।

न्यायिक प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता महसूस की जाती रही है। इस कड़ी में न्यायालय का नया निर्णय आगे ले जाने वाला सिद्ध हो सकता है, किंतु इन माध्यमों से संदेश हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं में भेजे जाएँ तब। उच्चतम न्यायालय से सूचना-बुलावे हिंदी-अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं, जबकि उच्च व जिला न्यायालयों से हिंदी या प्रांतीय भाषा में, ताकि संदेश पढ़ने वालों को कठिनाई न हो। बेशक अदालत का निर्णय सामाजिक दूरी को ध्यान में रखकर किया गया है, पर इसका सकारात्मक आयाम इसके अतिरिक्त भी है, जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकता है। कोरोना का टीका उपलब्ध होने के साथ सामाजिक दूरी का प्रश्न भले ही अप्रासंगिक हो जाए, पर न्यायालयी प्रक्रिया की सरलता सदैव अपेक्षित रहेगी; आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल में स्वभाषा-मातृभाषा की सुबोधता काम्य रहेगी। लंबे समय से चली आ रही माँग कि कंप्यूटर, इंटरनेट की भाषा के तौर पर हिंदी का प्रयोग अधिकाधिक हो, न्यायिक कार्य हिंदी और प्रांतीय भाषा में संपन्न हों, ताकि आम जनता इसे सहज समझ सके और इस प्रक्रिया का सक्रिय अंग बन सके - इससे एक छोटा चरण पूरा होता दिखता है। समूचा संघटन आखिर आम जनों के लिए ही तो है। सही है कि कम पढ़े-लिखे लोग भी मोबाइल पर हिंदी या क्षेत्रीय भाषा में संदेश लिखने के लिए अंग्रेजी की रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं। यह उन्हें आसान लगता है देवनागरी की अपेक्षा। शुरुआती दिनों की दी हुई पृष्ठभूमि से यह निर्मित परिस्थितियाँ हैं, जिनमें रोमन लिपि ही इनके प्रचलन का बुनियादी आधार रही है; लेकिन धीरे-धीरे भाषा की अपनी लिपि का प्रयोग बढ़ रहा है। न्यायालय में तकनीक और भाषा का प्रश्न लोकतांत्रिक प्रणाली में जनता की अधिकतम सहभागिता के व्यापक अवधारणात्मक व्यवहार से जुड़ा मसला है। समय बीतने के साथ केस की तारीख, प्रगति-रिपोर्ट और निर्णय भी इन्हीं माध्यमों से भेजे जा सकते हैं। व्हाट्स एप्प, मैसेंजर आदि का इस्तेमाल अन्य शासनिक-प्रशासनिक क्षेत्रों में किया जा सकता है। यह सब जितना औपचारिक स्तर पर लोकप्रिय होगा, प्रक्रिया उतनी सरल, सहज और सीधी होगी; न्यायालयी प्रक्रिया और प्रशासनिक तंत्र में विश्वास के साथ जन सरोकार बढ़ेगा। इस प्रकार न्यायालय और जनता का सीधा संवाद लोकतंत्र की विश्वसनीयता का उत्तम उपक्रम बन सकता है।

## सिकुड़ती सुभीता, बढ़ते हौसले

कोरोना के कारण क्या आम, क्या खास - सबकी दिनचर्या में बदलाव आया है। सामाजिक, शासनिक, प्रशासनिक, न्यायिक, चिकित्सा सहित सभी क्षेत्रों की कार्य पद्धतियों को बदलना पड़ा है। संक्रमण के विस्तार को रोकने के लिए जब लोकबंदी की घोषणा हुई तो वह सर्वप्रथम एक दिन के लिए ही थी। लोगों ने सोचा कि 22 मार्च की ही तो बात है, उस दिन नहीं निकले तो पहाड़ नहीं टूट जाएगा। वैसे भी 22 तारीख को रविवार था, जो साधारणतः अवकाश का दिन है, इसलिए हर्षोत्साह के साथ उसका जोरदार स्वागत हुआ। उसी दिन लोकबंदी को बढ़ाकर 31 मई तक के लिए विस्तारित किया गया तो सकपकाहट बढ़ी, पर कोरोना के बढ़ते प्रकोप से बचने के लिए घर के भीतर रहना अनुचित नहीं लगा। जिस किसी ने भी

बाहर निकलने का दुस्साहस किया, उन्हें प्रशासनिक सख्ती झेलनी पड़ी और घूमने का इरादा बदलना पड़ा। जब लोकबंदी अप्रैल भर के लिए बढ़ाई गई, तब लोग छटपटाए तो सही, पर इस दौरान कोरोना के केस भी द्रुत गति से बढ़ते देख सहमे रहे। पुनः तीसरी लोकबंदी 18 मई तक, फिर चौथी कुछ छूट के साथ 31 मई तक और अब पाँचवाँ-छठा लॉकडाउन अधिक छूट के साथ लागू है। 22 मार्च से 18 मई तक पूर्ण लोकबंदी में व्यक्तिगत-सामाजिक गतिविधियाँ न केवल सिमट गईं, अपितु कम से कमतर होकर सोच और व्यवहार में परिलक्षित होती रहीं। मनोरंजनपरक, विलासितापूर्ण क्रियाकलापों को तिलांजली देते हुए नितांत बुनियादी आवश्यकताओं पर ठहरकर सिमटना पड़ा। जो इच्छाएँ पूर्ति की क्षमता से युक्त होती हैं, वे आवश्यकताएँ बन जाती हैं और जहाँ उनकी पूर्ति की संभावना नहीं होती, वहाँ वे कामना, कल्पना, सपना हो जाती हैं। इस प्रकार आवश्यकता वह नहीं जो अभीप्सित हो, बल्कि वह है जिसकी पूर्ति का सामर्थ्य हो। संसाधनों द्वारा इच्छाओं के आवश्यकता बनने और आवश्यकताओं के सपने बनने की कशमकश चलती रहती है। इस व्यवहार-परिधि के अंतर्गत सीमाओं के सिकुड़ने पर आवश्यकताएँ कमतर हो जाती हैं। न्यून का न्यूनतम होने का सिलसिला तब तक चलता है, जब तक संसाधनों के सिमटाव पर विराम नहीं लगता, अथवा उसका दुबारा विस्तार शुरू नहीं होता। जरूरी नहीं कि विराम लगे ही, यह सिमटते-सिमटते एकदम शून्य हो सकता है या सिमटाव के अंतिम बिंदु तक पहुँचने से पहले प्रयोक्ता का अवसान भी हो सकता है और फिर संसाधनों के विराम-विस्तार का मूल प्रश्न सदा के लिए दफन हो जाता है।

लोकबंदी के दौरान लाखों लोगों ने - किसी ने कम तो किसी ने अधिक दूरी का सफर तरह-तरह के कष्ट झेलते हुए तय किया, कुछ को जान से हाथ भी धोना पड़ा, किंतु ज्यादातर अपने मुकाम पर तमाम बाधाओं को पार करते हुए पहुँच गए। बहरहाल, एक छोटी यात्रा करनी होती है तो कितनी तैयारी होती है। एक-आध किलोमीटर के लिए रिक्शा-ऑटो देखना पड़ता है, दस-बीस किलोमीटर के लिए बस, मेट्रो आदि का इंतजार और इनसे आगे के लिए रेल-विमान से यात्रा की जाती है। रेल तो उच्च, मध्य, निम्न और किराया न दे पाने वालों की भी गाड़ी है। ट्रेन से कितना समय लगेगा, वह कब खुलेगी - कब पहुँचाएगी - वह समय उपयुक्त होगा कि नहीं, उसमें आरक्षण उपलब्ध है या नहीं, है तो किस क्लास-वर्ग में है, उसका किराया कितना बैठेगा, उसके पहुँचने के बाद बस-रेल से आगे की यात्रा आसान होगी कि नहीं, उसमें खाने की उपलब्धता कैसी है - आदि अन्यान्य विषयों पर विचार किया जाता है और कई बार इनमें से एक चीज भी फिट न बैठने पर यात्रा टल जाती है। आकस्मिक स्थिति में तत्काल आरक्षण या फिर टिकट निरीक्षक (टीटीई) वगैरह से प्रबंध कराकर; अथवा मंत्री, सांसद या अन्य सूत्रों की सिफारिश से रिजर्वेशन पक्का कराकर यात्रा को सुगम बनाने की हरसंभव कोशिश होती है। कई बार प्रतीक्षा-सूची के टिकट को पक्का कराने के लिए भागदौड़ करना यात्रा की थकान की अपेक्षा ज्यादा कष्टकर लगता है। कूली से लेकर प्लेटफार्म टिकट तक के बंदोबस्त के बारे में सोचना, ट्रेन लेट होने पर कोसना, पानी की किल्लत पर बिफरना, सामान रखने के लिए, सीट के लिए, पाँव पसारने के लिए, बैठने-उतरने के लिए, सीट बदलने के लिए तू-तू मैं-मैं और कई बार झगड़ा-फसाद सफर में चलता है; लेकिन लोकबंदी में न खाना न पानी, न सवारी और न कोई तैयारी और प्रवासी जन साइकिल से, रिक्शा से, ठेला से, ऑटो से और ज्यादातर पैदल अपने गंतव्य की ओर कूच करने लगे। पाँच सौ, हजार, डेढ़ हजार किलोमीटर का सफर तपती धूप में और उसमें भी पुलिस की नजर से बचकर तय करना कम हिम्मत का काम नहीं, किंतु हिम्मत करनी पड़ी, क्योंकि किसी रूप में यह अपरिहार्य मान ली गई थी अथवा बना दी गई थी। जल्दीबाजी व घबड़ाहट की वजह से इसे विकल्पहीन बना दिया गया तो फिर 'मरता क्या न करता' और 'मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी' भी तो होता है। पैदल हजारों किलामीटर के सफर के बारे में सोचना ही मूर्खतापूर्ण लगता है, लेकिन आपदाओं - भूकंप, बाढ़, सूनामी, महामारी के समय लोग कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं। कोमल सेज पर सोने वालों को जमीन पर जगह नहीं मिलती; आदमी के अर्श से फर्श पर आने में देर नहीं लगती।

कोरोना संक्रमितों को अस्पताल में प्रवेश के लिए भटकना पड़ा है। कुछ मरीजों की जहाँ-तहाँ भटकने के सिलसिले में जान चली गई। संचार और यातायात साधनों के प्रसार के कारण दुनिया की कम हुई दूरी इक्कीसवीं सदी में कोरोना के भय के कारण पुनः बढ़ गई है। एक-दूसरे से दूरी बनाकर रहने, दूर-दूर ही मिलने और अलग-थलग रहने को लोग विवश हैं। चिकित्सक, नर्स, कर्मचारी भी संक्रमण के खतरे से जूझ रहे हैं। परिजन अपने सगे-संबंधियों के मृत शरीर को पहचानने और उनके दर्शन से कतराने लगे, छोड़कर भागने लगे, अंत्य क्रिया से चाहे-अनचाहे दूर रहने लगे। मृत्यु के बाद परिजनों को घंटों सूचना नहीं मिल पा रही। संचार क्रांति के उलट कोरोना के प्रति सजगता ने वैयक्तिक-सामाजिक ही नहीं, शारीरिक व दिल की दूरी को भी चाहे-अनचाहे बढ़ाने का कार्य किया है। इस अर्थ में कोरोना के प्रति क्रांति संचार और यातायात क्रांति से भिन्न है। इसकी जरूरत क्या इसलिए पड़ गई थी, क्योंकि वैश्विक दूरी घटने के क्रम में व्यक्ति अपनों से कम, अपने से ज्यादा दूर हो गया था?

कोरोना ने विकास-विस्तार को प्रत्येक स्तर पर अवरुद्ध ही नहीं, उसे सीमित-संकुचित करने के लिए विवश किया है; लेकिन हौसला की उड़ानों को अपरिमित भी किया है। सवा करोड़ से अधिक लोग संक्रमित हो गए हैं, हालाँकि मृत्यु दर काफी कम है और ठीक होने वालों का प्रतिशत नब्बे-पंचानवे प्रतिशत तक है। लेकिन वैश्विक संक्रमण के मामले में भारत का तीसरे स्थान पर पहुँच जाना चिंताजनक है। एक अनुमान के मुताबिक अगले कुछ महीनों में कोरोना से दस करोड़ लोगों की जान जा सकती है, लेकिन यह अनुमान केवल भारत को लेकर नहीं है, वरन् वैश्विक परिदृश्य को लेकर है। न्यूजीलैंड, पापुआ न्यू गिनी, आयसलैंड, फीजी जैसे छोटे और वियतनाम, चीन जैसे बड़े देश मिलाकर दो दर्जन से अधिक देश कोरोना मुक्त हो चुके हैं, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वे सदा के लिए मुक्त हो गए, संक्रमण आगे फैल सकता है। जब तक इसका पुख्ता इलाज और टीका उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक कोई भी देश इसके संक्रमण से सुरक्षित नहीं माना जा सकता। कोरोना के अतिरिक्त एचआईवी, एवियन इंफ्लूयंजा का टीका उपलब्ध नहीं है। इन सबसे बचाव का एकमात्र उपाय है सावधानी बरतना और परहेज-निषेध का पूर्णतः पालन करना। मार्च में साढ़े पाँच सौ केस पर भारत में लोकबंदी और उसके अंतर्गत जितनी सख्ती बरती गई थी, अब आठ लाख केस हो जाने के बाद भी नहीं रखी जा रही है। जिन कारणों से लोकबंदी हुई थी, वे कारण ज्यादा भयावह हो गए हैं, अतः अनौपचारिक अनुशासन के तौर पर लोकबंदी के दिशानिर्देशों का पालन अपेक्षित है।